A R DIGITECH
International Journal Of Engineering, Education And Technology (ARDIJEET)
www.ardigitech.in ISSN 2320-883X, VOLUME 12 ISSUE 03 14/09/2024

प्रताप नारायण की रचनाओं में संस्कृति

डॉ. अवि सुखीजा, सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, ग्रामोत्थान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, संगरिया

परिचयात्मक शोध की भूमिका

"संस्कृत के एक विद्वान के अनुसार 'संस्कृति' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है सम् उपसर्ग 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में 'सुट्' का आगम करके 'क्तिन' प्रत्यय करने से 'संस्कृति' शब्द बनता है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर 'संस्कृति' का अर्थ होता है– भूषणायुक्त सम्यक् कृति या चेष्टा। इस वाक्य में 'सम्यक' शब्द ध्यान देने योग्य है। सामान्य प्राणी की क्रियाएँ अपने मूल रूप में शरीर की प्रकृति के अनुसार स्वच्छंद होती हैं, उनके स्थान, समय, संपर्क आदि ध्यान नहीं रखा जाता। परन्तु मनुष्य इस प्रकार की स्वच्छंदता को उचित नहीं समझता, वह अपने कार्य–व्यापारों को वही रूप देना चाहता है जो उचित और सम्यक् हो। उक्त व्युत्पत्ति के अनुसार 'संस्कृति' के अर्थ का संबंध ऐसी ही सम्यक् कृति या चेष्टा से जोड़ा गया है।"

किसी भी देश के आचार–विचार ही उस राष्ट्र की संस्कृति होती है, लेकिन आचार–विचार तो संस्कृति का बाहरी रूप है। उसका अन्तरंग रूप तो मनुष्य का शेष प्रकृति के साथ तादात्मय है जो किसी भी धर्म, जाति, अथवा देश के सभ्य व्यक्तियों के विचार, वाणी, एवं रहन–सहन का जो रूप होता है उसी को हम संस्कृति कहते हैं हर राष्ट्र की अपनी संस्कृति होती है। जिससे उस राष्ट्र के समस्त संस्कारों का बोध होता है, जिनके आधार पर वह अपने सामाजिक या सामूहिक आदर्शों का निर्माण करता है, यह विशिष्ट समुदाय धर्म, जाति अथवा राष्ट्र की विशिष्टता प्रकट करते हैं।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार – "संस्कृति उस दृष्टिकोण को कहते हैं जिसमें कोई समुदाय विशेष जीवन की समस्याओं पर निर्भर करता है। यह दृष्टिकोण कई बातों पर निर्भर करता है। थोड़े में हम कह सकते हैं कि समुदाय की वर्तमान अनुभूतियों के संस्कारों के अनुरूप उसका दृष्टिकोण होता है।" इस संदर्भ में डा० मायारानी टंडन का कथन है– समान संस्कारों वाले मनुष्यों के समूहों को ही साधारणतया जाति या समाज समझा जाता है। अतएव समाज की प्रकृति या स्वभाव और आस्था या विश्वास की प्रेरक भावनाओं में प्रायः समान संस्कार रहते हैं। संभवतः इसी कारण संस्कृत की एक प्राचीन उक्ति में, किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन–व्यापारों, सामाजिक संबंधों और मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले तत्वों की समष्टि को 'संस्कृति' कहा गया है। इस प्रकार मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाओं और जाति विशेष के आंतरिक भावों की अभिव्यंजना को संस्कृति समझना चाहिए।"

डा० श्रीगोपीनाथ कविराज कहते हैं– "प्रत्येक संस्कृति की एक विशिष्ट आत्मा है। यही उसका बीज स्वरूप है। बीज अविनश्वर है, अर्थात् प्रवाह रूप में नित्य है। वृक्ष शुष्क हो जाने पर भी जैसे उसका बीज रह जाता है और सुयोग प्राप्त होने पर फिर अंकुरित होता है, संस्कृति का बीज भी ऐसा ही होता है। जाति में यदि वैशिष्टय संरक्षित रहे तब तो वह जाति जीवित रहती है, उस समय भी बीज तो रहता ही है, परन्तु जाति का लोप हो जाने पर भी उसके बीज का नाश नहीं होता। जाति का जीवन काल या स्वभाव–स्थिति कितने दिनों के लिए है? इस शंका के समाधान रूप में कहा जा सकता है कि जब तक बीज के विभक्त दो अंशों में मुख्य अंश वंश परम्परा क्रम से गौणांश का विकार रहने पर भी अविकृत रहता है, तब तक जाति का जीवन नष्ट नहीं होता। मुख्यांश में विकार प्रायः नहीं होता। कदाचित् हो जाय, तो कहा जाता है कि उस संस्कृति की मृत्यु हो गई, उस जाति का लोप हो गया।

जाति की आत्मा क्या है ? इस विषय के विशेषज्ञ आचार्य कहते हैं कि यह विशिष्ट संस्कारों को अयुतसिद्ध संघात मात्र है। प्रत्येक देश में जल, वायु, भूमि, सूक्ष्म वातावरण आदि कारणों से एक विशिष्ट प्रकृति का विकास होता है। उस देश में दीर्घकाल अवस्थान करने के प्रभाव से उस पर देश–प्रकृति की छाप लग जाती है।"

"संस्कृति एक अनवरत अनन्त प्रवाह है। इस प्रवाह में श्रेष्ठ की ही सत्ता है, अन्य कुछ ठहरने नहीं पाती।

अनन्त काल क्रम में विशाल जन समुदाय और रीतियाँ–नीतियाँ जन्म् लेती हैं और मिटती चली जाती हैं।

शेष रह जाता है इनका सत्वांश या यों कहें कि दीर्घकालीन परम्परा का सर्वश्रेष्ठ ही संस्कृति के विराट् सत्य का अंग बनता है। संस्कृति मानव जीवन के अन्तः बाह्य दोनों पक्षों को स्पर्श करती है। अन्तर में मानवता किंवा देवत्व की प्रतिष्ठा करती है और बाह्य में आचरण का निष्पादन सदाचार मानवता का निष्पद रूप है।"

रामधारी सिंह दिनकर ने संस्कृति की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त की है– 'पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक अभ्युदय के उपयुक्त देहन्द्रिया, मन, बुद्धि, अंहकारादि की भूषण भूत सम्यक् चेष्टाएँ एवं हलचलें ही संस्कृति हैं। वास्तव में देखा जाए तो संस्कृति जीवन का एक स्टाईल है, यह स्टाईल सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।

आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार– "एक सिखलाई हुई या सुधरी हुई ज्ञान, शक्ति, रीति–रिवाज तथा रूचि एक समय या स्थान में इसका प्रचलित रूप है।

परिचयात्मक शोध के सोपान

संस्कृति के वरदहस्त से अनुप्राणित राष्ट्र निरन्तर प्रगति के पथ को प्रशस्त करते हैं। अतः संस्कृति के इतिहास को प्रस्तुत करने वाले तत्व निश्चय ही महान होते हैं। संस्कृति आन्तरिक वस्तु है। इसके अन्तर्गत मनुष्य के आचार–विचार, उसके जीवन–मूल्य उसकी नैतिकता, संस्कार, आदर्श, शिक्षा, धर्म, साहित्य और कला का समावेश होता है, अतः संस्कृति एक व्यापक तत्व है। निश्चय ही संस्कृति मानव की साधना की सर्वोत्तम परिणति है। इस सर्वोत्तम परिणति का ज्ञान इतिहास से होता है, अतः इतिहास एवं संरकृति के अभेद संबंध हैं।" भारत में जिस संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है, जगत् के किसी और राष्ट्र से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। मिस्र (इजिप्ट), फिनिशिया, क्रीट, पार्थिया, भूमध्यसागर की प्राच्य प्रान्त भूमि, ग्रीस, प्राचीन चीन किसी भी राष्ट्र की संस्कृति गम्भीरता, व्यापकता विरोध, समन्वय, सामर्थ्य और सर्वतोमुख उन्नति के विषय में भारतीय संस्कृति के साथ तुलना–योग्य नहीं प्रतीत होती। व्यष्टि के साथ समष्टि का तथा दूसरी तरफ सर्वातीत मूल सत्ता का इस प्रकार अद्भुत समन्वय और किसी राष्ट्र में नहीं दीखता। यदि किसी दिन भारतीय संस्कृति की ऐतिहासिक क्रम–धारा के अन्तराल में रहने वाले तत्वों का विश्लेषण सम्पन्न होगा, तो भारतीय संस्कृति की महिमा प्रस्फुटित होगी।

परिचयात्मक शोध का महत्त्व

"सभ्यता को यदि हम चरम मूल्य न मानें तो भी कोई हर्ज नहीं है। चरम मूल्य से हमारा तात्पर्य उस मूल्य से है जिसकी कामना स्वयं उसी मूल्य के लिये की जाती है, किसी दूसरे लक्ष्य की प्राप्ति के लिये नहीं। मनुष्य सज्ञान प्राणी होने के नाते मुख्यतः यह कामना करता है कि उसकी जरूरतें निर्विघ्न पूरी होती रहें। मनुष्य की कुछ ऐसी मौलिक क्षुधाएं तथा जरूरतें हैं जिनके पूरा न होने से उसे अमिश्रित कष्ट होता है। दूसरे प्रकार की आकांक्षाएँ, जो मूल क्षुधाओं से संबंधित नहीं हैं, उतनी कष्टकर नहीं होतीं। वैसी आकांक्षाएँ तथा इच्छाएँ अनिवार्य भी नहीं होतीं। उदाहरण के लिये यश की इच्छा एक अनिवार्य आवश्यकता नहीं है। इसके विपरीत भोजन आदि की इच्छा एक अनिवार्य भूख या आवश्यकता के रूप में महसूस होती है और उसकी पूर्ति न होने से व्यक्ति को एकान्त कष्ट होता हैः वह स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करने में असमर्थ हो जाता है।

परिचयात्मक शोध के उद्देश्य

सांस्कृतिक जागरूकता अनुसंधान अपने आप में कोई नया नहीं है लेकिन नवीन तथ्यों की परिपाटी पर, लेखक के साहित्य को विश्लेषित करना मेरा प्रयास है। अनुसंधान एक निरंतर प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत् शोधार्थी ने सांस्कृतिक जागरूकता को विश्लेषित किया है।

1. संस्कृति मानव की साधना की परिणति जो मानव के उस क्षेत्र में वर्चस्व को दर्शाती हैं।
2. संस्कृति की आधारशिला पर ही राष्ट्र को निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर करती है।
3. संस्कृति आंतरिक आंतरिक वस्तु है इसके अन्तर्गत मनुष्य के आचार विचार, नैतिकता, आदर्श एवं संस्कार निहित होते हैं।

परिचयात्मक शोध का निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि प्राप्त परम्पराएँ ही संस्कृति हैं। इस परिभाषा को हम यदि और स्पष्ट करें तो हम कह सकते हैं कि व्यक्ति और समाज परिष्करण, उदात्तीकरण अथवा उसके सत्य, शिव, सुन्दर स्वरूप निर्माण के लिये उस व्यक्ति और समाज को उसके अस्तित्व में आने से और आज तक जो परम्पराएँ प्राप्त होती हैं उसी का नाम संस्कृति है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि हम भीतर और बाहर से जो कुछ हैं, वही हमारी संस्कृति का स्वरूप है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 अग्रवाल, प्रेमलता (1969): हिन्दी नाटको में नायिका की परिकल्पना, प्रेमी प्रिटिंग, सुभाष बाजार, मेरठ, 1969
2. अजित कुमार (1974) :आचार्य शुक्ल विचार कोश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
3. अरोड़ा, ज्ञानवती (1980) : हिन्दी साहित्य में प्रहसन, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980
4. अरोड़ा, नारायन प्रसाद एवं (1949): प्रताप लहरी, प्रथम संस्करण, कानपुर। सत्य भक्त (संपा)
5. डॉ आरिफ़ नज़ीर(1993) :राष्ट्रीयता और भरतेन्दु हरिश्चन्द्र, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
6. डॉ आरिफ़ नज़ीर (1993) : भक्तिकालीन सांस्कृतिक चेतना में रहीम का योगदान, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़।